

## जनकजी का पहुँचना, कोल किरातादि की भेंट, सबका परस्पर मिलाप

चौपाई :

\*\*\* भाइ सचिव गुर पुरजन साथ। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥ गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं।  
करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥1॥

भावार्थ:

भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर श्री रघुनाथजी आगे (जनकजी की अगवानी में)  
चले। जनकजी ने ज्यों ही पर्वत श्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़  
दिया। (पैदल चलना शुरू कर दिया)॥1॥

\*\*\* राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥ मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु  
मन तन दुख सुख सुधि केही॥2॥

भावार्थ:

श्री रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को रास्ते की थकावट और क्लेश  
जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्री राम और जानकीजी हैं। बिना मन के शरीर के सुख-  
दुःख की सुधि किसको हो?॥2॥

\*\*\* आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥ आए निकट देखि अनुरागे।  
सादर मिलन परसपर लागे॥3॥

भावार्थ:

जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है। निकट  
आए देखकर सब प्रेम में भर गए और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे॥3॥

\*\*\* लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥ भाइन्ह सहित रामु मिलि  
राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥4॥

भावार्थ:

जनकजी (वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी) मुनियों के चरणों की वंदना करने लगे और श्री रामचन्द्रजी  
ने (शतानंद आदि जनकपुरवासी) ऋषियों को प्रणाम किया। फिर भाइयों समेत श्री रामजी राजा  
जनकजी से मिलकर उन्हें समाज सहित अपने आश्रम को लिवा चले॥4॥

दोहा :

\*\*\* आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु। सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिँ रघुनाथु॥75॥

भावार्थ:

श्री रामजी का आश्रम शांत रस रूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है। जनकजी की सेना (समाज)

मानो करुणा (करुण रस) की नदी है, जिसे श्री रघुनाथजी (उस आश्रम रूपी शांत रस के समुद्र में मिलाने के लिए) लिए जा रहे हैं॥275॥

चौपाई :

\*\*\* बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥ सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥1॥

भावार्थ:

यह करुणा की नदी (इतनी बड़ी हुई है कि) ज्ञान-वैराग्य रूपी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं और सोच की लंबी साँसें (आहें) ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगें हैं, जो धैर्य रूपी किनारे के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं॥1॥

\*\*\* बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा॥ केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेड़ ऐक नहिं आवा॥2॥

भावार्थ:

भयानक विषाद (शोक) ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम (मोह) ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान मल्लाह हैं, विद्या ही बड़ी नाव है, परन्तु वे उसे खे नहीं सकते हैं, (उस विद्या का उपयोग नहीं कर सकते हैं) किसी को उसकी अटकल ही नहीं आती है॥2॥

\*\*\* बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे॥ आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥3॥

भावार्थ:

वन में विचरने वाले बेचारे कोल-किरात ही यात्री हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गए हैं। यह करुणा नदी जब आश्रम-समुद्र में जाकर मिली, तो मानो वह समुद्र अकुला उठा (खौल उठा)॥3॥

\*\*\* सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥ भूप रूप गुन सीलसराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥4॥

भावार्थ:

दोनों राज समाज शोक से व्याकुल हो गए। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथजी के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक समुद्र में डुबकी लगा रहे हैं॥4॥

छन्द :

\*\*\* अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा। दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥ सुरसिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की। तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

भावार्थ:

शोक समुद्र में डुबकी लगाते हुए सभीस्त्री-पुरुष महान व्याकुल होकर सोच (चिंता) कर रहे हैं। वे सब विधाता को दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रतिकूल विधाता ने यह क्याकिया? तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणों में कोई भी समर्थ नहीं है, जो उस समय विदेह (जनकराज) की दशा देखकर प्रेम की नदी को पार कर सके (प्रेम में मग्न हुए बिना रह सके)। सोरठा :

\*\*\* किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह। धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन॥276॥

भावार्थ:

जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने लोगों को अपरिमित उपदेश दिए और वशिष्ठजी ने विदेह (जनकजी) से कहा- हे राजन्! आप धैर्य धारण कीजिए॥276॥

चौपाई :

\*\*\* जासु ग्यान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥ तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥1॥

भावार्थ:

जिन राजा जनक का ज्ञान रूपी सूर्य भव (आवागमन) रूपी रात्रि का नाश कर देता है और जिनकी वचन रूपी किरणें मुनि रूपी कमलों को खिला देती हैं (आनंदित करती हैं), क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं? यह तो श्री सीता-रामजी के प्रेम की महिमा है! (अर्थात् राजा जनक की यह दशा श्री सीता-रामजी के अलौकिक प्रेम के कारण हुई लौकिक मोह-ममता के कारण नहीं। जो लौकिक मोह-ममता को पार कर चुके हैं, उन पर भी श्री सीता-रामजी का प्रेम अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता)॥1॥

\*\*\* बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥ राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥2॥

भावार्थ:

विषयी, साधक और ज्ञानवान सिद्ध पुरुष- जगत में तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताए हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्री रामजी के स्नेह से सरस (सराबोर) रहता है, साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है॥2॥

\*\*\* सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥ मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। राम घाट सब लोग नहाए॥3॥

भावार्थ:

श्री रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधार के बिना जहाज। वशिष्ठजी ने

विदेहराज (जनकजी) को बहुत प्रकार से समझाया। तदनंतर सब लोगों ने श्री रामजी के घाट पर स्नान किया॥3॥

\*\*\* सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥ पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारु। प्रिय परिजन कर कौन बिचारु॥4॥

भावार्थ:

स्त्री-पुरुष सब शोक से पूर्ण थे। वह दिन बिना ही जल के बीत गया (भोजन की बात तो दूर रही, किसी ने जल तक नहीं पिया)। पशु-पक्षी और हिरनों तक ने कुछ आहार नहीं किया। तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियों का तो विचार ही क्या किया जाए?॥4॥

दोहा :

\*\*\* दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात। बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात॥277॥

भावार्थ:

निमिराज जनकजी और रघुराज रामचन्द्रजी तथा दोनों ओर के समाज ने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे। सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं॥277॥

चौपाई :

\*\*\* जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी॥ हंस बंस गुर जनक पुरोध। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥॥

भावार्थ:

जो दशरथजी की नगरी अयोध्या के रहने वाले और जो मिथिलापति जनकजी के नगर जनकपुर के रहने वाले ब्राह्मण थे तथा सूर्यवंश के गुरु वशिष्ठजी तथा जनकजी के पुरोहित शतानंदजी, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदय का मार्ग तथा परमार्थ का मार्ग छान डाला था,॥1॥

\*\*\* लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥ कौंसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सब सभा सुबानी॥2॥

भावार्थ:

वे सब धर्म, नीति वैराग्य तथा विवेकयुक्त अनेकों उपदेश देने लगे। विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कह-कहकर सारी सभा को सुंदर वाणी से समझाया॥2॥

\*\*\* तब रघुनाथ कौंसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सुब रहेऊ॥ मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥3॥

भावार्थ:

तब श्री रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग बिना जल पिए ही रह गए थे। (अब कुछ आहार करना चाहिए)। विश्वामित्रजी ने कहा कि श्री रघुनाथजी उचित ही कह रहे

हैं। ढाई पहर दिन (आज भी) बीत गया॥3॥

\*\*\* रिषि रुख लखि कह तेरहु तिराजू। इहाँ उचित नहिँ असन अनाजू॥ कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥4॥

भावार्थ:

विश्वामित्रजी का रुख देखकर तिरहुत राज जनकजी ने कहा- यहाँ अन्न खाना उचित नहीं है। राजा का सुंदर कथन सबके मन को अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले॥4॥

दोहा :

\*\*\* तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार। लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार॥278॥

भावार्थ:

उसी समय अनेकों प्रकार के बहुत से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहँगियों और बोझों में भर-भरकर वनवासी (कोल-किरात) लोग ले आए॥278॥

चौपाई :

\*\*\* कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥ सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनंद अनुरागा॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी की कृपा से सब पर्वत मनचाही वस्तु देने वाले हो गए। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के सभी भागों में मानो आनंद और प्रेम उमड़ रहा है॥1॥

\*\*\* बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥ तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥

भावार्थ:

बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गए। पक्षी, पशु और भौरें अनुकूल बोलने लगे। उस अवसर पर वन में बहुत उत्साह (आनंद) था, सब किसी को सुख देनेवाली शीतल, मंद, सुगंध हवा चल रही थी॥2॥

\*\*\* जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥ तब सब लोग नहाइ नहाई राम जनक मुनि आयसु पाई॥3॥ देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥ दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥4॥

भावार्थ:

वन की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनकजी की पहुनाई कर रही है। तब जनकपुर वासी सब लोग नहा-नहाकर श्री रामचन्द्रजी, जनकजी और मुनि की आज्ञा पाकर, सुंदर

वृक्षों को देख-देखकर प्रेम में भरकर जहाँ-तहाँ उतरने लगे। पवित्र, सुंदर और अमृत के समान (स्वादिष्ट) अनेकों प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कंद-॥3-4॥

दोहा :

\*\*\* सादर सब कहँ रामगुरु पठए भरि भरि भार। पूजि पितर सुर अतिथि गुरु लगे करन फरहार॥279॥

भावार्थ:

श्री रामजी के गुरु वशिष्ठजी ने सबके पास बोझो भर-भरकर आदरपूर्वक भेजे। तब वे पितर-देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे॥279॥

चौपाई :

\*\*\* एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥ दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार चार दिन बीत गए। श्री रामचन्द्रजी को देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं। दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि श्री सीता-रामजी के बिना लौटना अच्छा नहीं है॥1॥

\*\*\* सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥ परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥2॥

भावार्थ:

श्री सीता-रामजी के साथ वन में रहना करोड़ों देवलोको के (निवास के) समान सुखदायक है। श्री लक्ष्मणजी, श्री रामजी और श्री जानकीजी को छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं॥2॥

\*\*\* दाहिन दइउ होइ जब सबही। राम समीप बसिअ बन तबही॥ मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला॥3॥

भावार्थ:

जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्री रामजी के पास वन में निवास हो सकता है। मंदाकिनीजी का तीनों समय स्नान और आनंद तथा मंगलों की माला (समूह) रूप श्री राम का दर्शन,॥3॥

\*\*\* अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल॥ सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी के पर्वत (कामदनाथ), वन और तपस्वियों के स्थानों में घूमना और अमृत के समान कंद, मूल, फलों का भोजन। चौदह वर्ष सुख के साथ पल के समान हो जाएँगे (बीत जाएँगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे॥4॥ कौसल्या सुनयना-संवाद, श्री सीताजी का शील

दोहा :

\*\*\* एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु। सहज सुभायँ समाज दुहु राम चरन  
अनुरागु ॥280॥

भावार्थ:

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? दोनों समाजों का श्री रामचन्द्रजी के चरणों में सहज स्वभाव से ही प्रेम है॥280॥

चौपाई :

\*\*\* एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥ सीय मातु तेहि समय  
पठाई। दासी देखि सुअवसरु आई॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही (सुनने वालों के) मनो को हर लेते हैं। उसी समय सीताजी की माता श्री सुनयनाजी की भेजी हुई दासियाँ (कौसल्याजी आदि के मिलने का) सुंदर अवसर देखकर आईं॥1॥

\*\*\* सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥ कौसल्याँ सादर सनमानी। आसन  
दिए समय सम आनी॥2॥

भावार्थ:

उनसे यह सुनकर कि सीता की सब सासुएँ इस समय फुरसत में हैं जनकराज का रनिवास उनसे मिलने आया। कौसल्याजी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिए॥2॥

\*\*\* सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥ पुलक स्थिल तन बारि  
बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥3॥

भावार्थ:

दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं और नेत्रों में (शोक और प्रेम के) आँसू हैं। सब अपने (पैरों के) नखों से जमीन कुरेदने और सोचने लगीं॥3॥

\*\*\* सब सिय राम प्रीति की सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥ सीय मातु कह बिधि बुधि  
बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥4॥

भावार्थ:

सभी श्री सीता-रामजी के प्रेम की मूर्ति सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत सेवेष (रूप) धारण करके विसूर रही हो (दुःख कर रही हो)। सीताजी की माता सुनयनाजी ने कहा- विधाता की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन जैसी कोमल वस्तु को वज्र की टाँकी से फोड़ रहा है (अर्थात् जो

अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं उन पर विपत्ति पर विपत्ति ढहा रहा है)॥4॥

दोहा :

\*\*\* सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल। जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥281॥

भावार्थ:

अमृत केवल सुनने में आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता की सभी करतूतें भयंकर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही (दिखाई देते) हैं, हंस तो एक मानसरोवर में ही हैं॥281॥

चौपाई :

\*\*\* सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गतिबड़ि बिपरीत बिचित्रा॥ जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥1॥

भावार्थ:

यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोक के साथ कहने लगीं- विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली (विवेक शून्य) है॥1॥

\*\*\* कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥ कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥2॥

भावार्थ:

कौसल्याजी ने कहा- किसी का दोष नहीं है, दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन (दुर्विज्ञेय) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलों का देने वाला है॥2॥

\*\*\* ईस रजाइ सीस सबही कें। उत्पति थिति लय बिषहु अमी कें॥ देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥3॥

भावार्थ:

ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा अमृत और विष के भी सिर पर है (ये सब भी उसी के अधीन हैं)। हे देवि! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल और अनादि है॥3॥

\*\*\* भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥ सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥4॥

भावार्थ:

महाराज के मरने और जीने की बात को हृदय में याद करके जो चिन्ता करती हैं, वह तो हे सखी!



हम अपने ही हित की हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं। सीताजी की माता ने कहा- आपका कथन उत्तम है और सत्य है। आप पुण्यात्माओं के सीमा रूप अवधपति (महाराज दशरथजी) की ही तो रानी हैं। (फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी)॥4॥

दोहा :

\*\*\* लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु। गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥282॥

भावार्थ:

कौसल्याजी ने दुःख भरे हृदय से कहा- श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन में जाएँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरत की चिन्ता है॥282॥

चौपाई :

\*\*\* ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥ राम सपथ में कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ॥1॥

भावार्थ:

ईश्वर के अनुग्रह और आपके आशीर्वाद से मेरे (चारों) पुत्र और (चारों) बहुएँगंगाजी के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी! मैंने कभी श्री राम की सौगंध नहीं की, सो आज श्री राम की शपथ करके सत्य भाव से कहती हूँ॥1॥

\*\*\* भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥ कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥2॥

भावार्थ:

भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वतीजी की बुद्धि भी हिचकती है। सीप से कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं?॥2॥

\*\*\* जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥ कसैं कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ॥3॥

भावार्थ:

मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूँ। महाराज ने भी बास्बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न पारखी (जौहरी) के मिलने पर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है॥3॥

\*\*\* अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेहँ सयानप थोरा॥ सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईँ सनेह बिकल सब रानी॥4॥

भावार्थ:

किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है। शोक और स्नेह में सयानापन (विवेक) कम हो

जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरत की बड़ाई कर रही हूँ)। कौसल्याजी की गंगाजी के समान पवित्र करने वाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह के मारे विकल हो उठीं॥4॥

दोहा :

\*\*\* कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि। को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥283॥

भावार्थ:

कौसल्याजी ने फिर धीरज धरकर कहा- हे देवी मिथिलेश्वरी! सुनिए, ज्ञान के भंडार श्री जनकजी की प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है?॥283॥

चौपाई :

\*\*\* रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥ रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन॥1॥

भावार्थ:

हे रानी! मौका पाकर आप राजा को अपनी ओर से जहाँ तक हो सके समझाकर कहिएगा कि लक्ष्मण को घर रख लिया जाए और भरत वन को जाएँ। यदि यह राय राजा के मन में (ठीक) जँच जाए,॥1॥

\*\*\* तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥ गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥2॥

भावार्थ:

तो भलीभाँति खूब विचारकर ऐसा यत्न करें। मुझे भरत का अत्यधिक सोच है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम है। उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणों को कोई भय न हो जाए)॥2॥

\*\*\* लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥ नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥3॥

भावार्थ:

कौसल्याजी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुण रस में निमग्न हो गईं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गई और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गए॥3॥

\*\*\* सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥ देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥4॥

भावार्थ:

सारा रनिवास देखकर थकित रह गया (निस्तब्ध हो गया), तब सुमित्राजी ने धीरज करके कहा कि

हे देवी! दो घड़ी रात बीत गई है। यह सुनकर श्री रामजी की माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठीं-॥4॥  
\*\*\* दोहाथ बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय। हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस  
सहाय॥284॥

भावार्थ:

और प्रेम सहित सद्भाव से बोलीं- अब आप शीघ्र डेरे को पधारिए। हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर जनकजी सहायक हैं॥284॥

चौपाई :

\*\*\* लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥ देबि उचित असि बिनय  
तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी॥1॥

भावार्थ:

कौसल्याजी के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर जनकजी की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिए और कहा- हे देवी! आप राजा दशरथजी की रानी और श्री रामजी की माता हैं। आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है॥1॥

\*\*\* प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अग्नि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥ सेवकु राउ करम मन बानी।  
सदा सहाय महेसु भवानी॥2॥

भावार्थ:

प्रभु अपने निज जनों का भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँको और पर्वत तृण (घास) को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्री महादेव-पार्वतीजी हैं॥2॥

\*\*\* रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय की दिनकर सोहै॥ रामु जाइ बनु करि सुर काजू।  
अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥3॥

भावार्थ:

आपका सहायक होने योग्य जगत में कौन है? दीपक सूर्य की सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है? श्री रामचन्द्रजी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे॥3॥

\*\*\* अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपनै अपनै थल॥ यह सब जागबलिक कहि  
राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥4॥

भावार्थ:

देवता, नाग और मनुष्य सब श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं के बल पर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले ही से कहरखा है। हे देवि! मुनि का कथन व्यर्थ (झूठा) नहीं हो सकता॥4॥

दोहा :

\*\*\* अस कहि पग परि प्रेम अति सिय हित बिनय सुनाइ। सिय समेत सियमातु तब चली  
सुआयसु पाइ॥285॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर बड़े प्रेम से पैरों पड़कर सीताजी (को साथ भेजने) के लिए विनती करके और सुंदर  
आज्ञा पाकर तब सीताजी समेत सीताजी की माता डेरे को चलीं॥285॥

चौपाई :

\*\*\* प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥ तापस बेष जानकी देखी। भा  
सबु बिकल बिषाद बिसेषी॥1॥

भावार्थ:

जानकीजी अपने प्यारे कुटुम्बियों से- जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं। जानकीजी को  
तपस्विनी के वेष में देखकर सभी शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गए॥1॥

\*\*\* जनक राम गुरु आयसु पाई। चले थलहि सिय देखी आई॥ लीन्हि लाइ उर जनक जानकी।  
पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥2॥

भावार्थ:

जनकजी श्री रामजी के गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर डेरे को चले और आकर उन्होंने सीताजी  
को देखा। जनकजी ने अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकीजी को हृदय से लगा  
लिया॥2॥

\*\*\* उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू॥ सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता  
पर राम पेम सिसु सोहा॥3॥

भावार्थ:

उनके हृदय में (वात्सल्य) प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। राजा का मन मानो प्रयाग होगया। उस  
समुद्र के अंदर उन्होंने (आदि शक्ति) सीताजी के (अलौकिक) स्नेह रूपी अक्षयवट को बढ़ते हुए  
देखा। उस (सीताजी के प्रेम रूपी वट) पर श्री रामजी का प्रेम रूपी बालक (बाल रूप धारी  
भगवान) सुशोभित हो रहा है॥3॥

\*\*\* चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूडत लहेउ बाल अवलंबनु॥ मोह मगन मति नहिं बिदेह  
की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥4॥

भावार्थ:

जनकजी का ज्ञान रूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर डूबते-डूबते मानो उस श्री राम  
प्रेम रूपी बालक का सहारा पाकर बच गया। वस्तुतः (ज्ञानिशिरोमणि) विदेहराज की बुद्धि मोह में  
मग्न नहीं है। यह तो श्री सीता-रामजी के प्रेम की महिमा है (जिसने उन जैसे महान ज्ञानी के

ज्ञान को भी विकल कर दिया)॥4॥

दोहा :

\*\*\* सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि। धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु  
बिचारि॥286॥

भावार्थ:

पिता-माता के प्रेम के मारे सीताजी ऐसी विकल हो गईं कि अपने को सँभाल न सकीं। (परन्तु परम धैर्यवती) पृथ्वी की कन्या सीताजी ने समय और सुंदर धर्म का विचार कर धैर्य धारण किया॥286॥

चौपाई :

\*\*\* तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥ पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस  
धवल जगु कह सबु कोऊ॥॥

भावार्थ:

सीताजी को तपस्विनी वेष में देखकर जनकजी को विशेष प्रेम और संतोष हुआ। (उन्होंने कहा-) बेटा! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरे निर्मल यश से सारा जगत उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते हैं॥1॥

\*\*\* जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥ गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे।  
एहिं किए साधु समाज घनेरे॥2॥

भावार्थ:

तेरी कीर्ति रूपी नदी देवनादी गंगाजी को भी जीतकर (जो एक ही ब्रह्माण्ड में बहती है) करोड़ों ब्रह्माण्डों में बह चली है। गंगाजी ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गंगासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है। पर तेरी इस कीर्ति नदी ने तो अनेकों संत समाज रूपी तीर्थ स्थान बना दिए हैं॥2॥

\*\*\* पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥ पुनि पितु मातु लीन्हि उर  
लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥3॥

भावार्थ:

पिता जनकजी ने तो स्नेह से सच्ची सुंदर वाणी कही, परन्तु अपनी बड़ाई सुनकर सीताजी मानो संकोच में समा गईं। पिता-माता ने उन्हें फिर हृदय से लगा लिया और हितभरी सुंदर सीख और आशीष दिया॥3॥

\*\*\* कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं॥ लखि रुख रानि जनायउ  
राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥4॥

भावार्थ:

सीताजी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु सकुचा रही हैं कि रात में (सासुओं की सेवा छोड़कर) यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयनाजी ने जानकीजी का रुख देखकर (उनके मन की बात समझकर) राजा जनकजी को जना दिया। तब दोनों अपने हृदयों में सीताजी के शील और स्वभाव की सराहना करने लगे॥4॥

दोहा :

\*\*\* बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि। कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि॥287॥

भावार्थ:

राजा-रानी ने बार-बार मिलकर और हृदय से लगाकर तथा सम्मान करके सीताजी को विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुंदर वाणी में भरतजी की दशा का वर्णन किया॥287॥